जैन धर्म में वैज्ञानिकता के तत्व

- डां. नंदलाल जैन

यह विज्ञान का युग है। इसमें बुद्धिवाद और प्रयोगवाद की प्रधानता है। मानव के भौतिक जीवन को समृद्ध बनाने में अपने निरन्तर अन्वेषक स्वभाव के कारण उसने -

१. यातायात, संचार, स्वचालित यंत्र आदि के माध्यम से कायिक सुविधाएं अगणित रूप से बढ़ाई हैं। २. बाचनिक दूरियों को तो लगभग शून्यवत ही कर दिया है। ३. मानसिक दूरियों को कम किया है एवं मानव में विश्वबंधुत्व की भावना को पोषित किया है।

विज्ञान ने कृषि, खाद्य, जीव विज्ञान, औषध एवं चिकित्सा, तंतुकला, संश्लेषण-शिल्प एवं अतीन्द्रिय प्रत्यक्षण आदि के माध्यम से मानव मन को अत्यन्त प्रभावित किया है। इसके साथ पिछली अनेक सदियों में धर्म की प्रभावकता में कमी आई है। इससे व्यक्तिगत, सामाजिक, राष्ट्रिय एवं अन्तर्राष्ट्रीय जीवन में नैतिक विश्रृंखलन आया है। इस स्थिति से न केवल धर्माचार्य अपितु राजनीतिज्ञ, समाजशास्त्री एवं वैज्ञानिक भी चिंतित हो उठे हैं एवं एक दूसरे को दोषारोपित कर रहे हैं। इनकी सत्ता और सम्पति की मनोवृत्ति से साठगांठ से हुई विकृति पर कोई ध्यान नहीं दे रहा है। वस्तुतः आइंस्टीन जैसे विवेकशील वैज्ञानिकों ने अनुभव किया, "बिना विज्ञान के धर्म अंधा है और बिना धर्म के विज्ञान लंगड़ा है।" फलतः आज के समन्वित विकास के युग में धर्म और विज्ञान का "पंगु-अंधवत" संयोग एक अनिवार्य आवश्यकता है।

मध्य युग में विज्ञान प्रभावित पश्चिम में तो यह धारणा बलवती हो गई थी कि धर्म प्रायः अवैज्ञानिक ही है। इसी कारण उसी प्रभावकता में निरन्तर कमी होती रही है। इसके विपरीत में भारतीय संस्कृति की धारा में ऐसी कोई धारणा तो नहीं बनी और न ही वैज्ञानिकों को पश्चिम के समान प्रताड़ित ही किया गया। फिर भी कुछ दशकों से धर्म की वैज्ञानिकता पर संदेह अवश्य जन्म लेता रहा है। ऐया लगता है कि जैसे वैज्ञानिकों ने अपने

Jain Education International 2010_03 For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

उपयोगितावादी स्वरूप प्रदर्शित कर प्रतिष्ठा स्थापित की है, धर्मज्ञों ने अपने यथास्थितिवादी स्वरूप को प्रतिष्ठित रखने में समर्थता नहीं दिखा पाये। आधुनिक शब्दावली में धर्मज्ञों की धर्म-विपणन-क्षमता वैज्ञानिकों के समकक्ष सिद्ध नहीं हुई। उनके अमूर्त तत्त्वों के उद्देश्यों ने सांस्कृतिक इतिहास अवश्य बनाया पर वे मानव को मूर्त जगत से निर्मोही न बना सके। उनके उपदेशों की दिशाएं वास्तविक जीवन की दिशा से प्रतिकूल लगी। इसलिए उपरोक्त संदेह को बल ही मिलता रहा।

पर क्या धर्म सचमुच ही अवैज्ञानिक है ? क्या उसमें वैज्ञानिकता के तत्त्व नहीं है ? इस विषय में हम यहां केवल जैन-धर्म के सम्बन्ध में ही इन प्रश्नों की चर्चा करेंगे।

भारतीयों ने विद्या की एक ही देवी सरस्वती मानी है। इसका अर्थ यह है कि वे जगत के दो अस्तित्वों – दृश्य और अदृश्य अथवा भौतिक एवं अध्यात्म को एक ही चेतना-वृक्ष की दो टहनियां मानते हैं। पश्चिम ने भी स्वीकार किया है कि धर्म और विज्ञान – ये दोनों ही मानव की महत्तर मानसिक प्रवृत्तियां हैं। ये दोनों दुहिता-तंत्र है। ये एक दूसरे के अंतर्वेशन या बहिर्वेशन मात्र हैं। दोनों में ही अंतःप्रज्ञा की क्षणदीप्ति या दीर्घदीप्ति काम करती है। एक ही स्त्रोत से जन्म लेने के कारण इनका उद्देश्य एवं कार्यपद्धति भी एक समान है–प्राणीमात्र के अभ्युदय एवं निश्रेयस के लिए त्रिकालाबाधित सत्य मार्ग की खोज और तदनुरूप प्रवृत्ति। विभिन्न धर्मो ने एतदर्थ समग्र जीवन पद्धति और जीवन तंत्र को ही अपना विषय बनाया। इसके अंतर्गत क्रियाकांडों के अनुसरण एवं श्रद्धावाद की स्वीकृति के युग आये। इनमें यथास्थितिवाद को पोषण मिला। इसमें कोई संदेह नहीं कि यह प्रवृत्ति वैज्ञानिक की निरंतर प्रवाहशील प्रक्रिया के अनुरूप नहीं लगती। फिर भी धर्मज्ञों की स्वानुभूति, अन्तर्दृष्टि एवं प्रतिभाज्ञान की अचरजकारी एवं सम्भावित उपलब्धियों के परिप्रेक्ष्य में विज्ञान को द्वितीयक स्तर के रूप में ही प्रतिष्ठित किया। साथ ही यह मान्यता भी बनी कि प्रत्येक धर्म के केन्द्र में कुछ ऐसा अवश्य है जो उसे बुद्धिवाद का उपयोग नहीं करने देता। कालांतर में दार्शनिक या बुद्धिवाद प्रधान एवं वर्तमान प्रयोग प्रधान युग में धर्म एवं विज्ञान के क्षेत्र पृथक होते से प्रतीत हुए। धर्म जहां नैतिक आचार विचारों एवं अभौतिक तत्त्व समूह का प्रधान उदघोषक बना, वहीं विज्ञान भौतिक जगत का प्रधान उद्घाटक बना। इस तथ्य को अनेक विद्वान व्यक्त करने लगे हैं। उन्होंने तो यहां तक कहा है कि भौतिक जगत सम्बन्धी अनेक घटनाएं या उनकी व्याख्या धर्म के अंग के रूप में नहीं

Jain Education International 2010_03 For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मानी जानी चाहिए, क्योंकि वे असर्वज्ञ आचार्यों की देन है और उनका धर्म के मूल उद्देश्य–मानव के नैतिक विकास, बंधनमुक्ति एवं सुसंवर्धन की दृष्टि से कोई महत्त्व नहीं है।

विद्वानों के उपरोक्त मत के बावजूद भी यह पाया गया है कि प्राचीन जैन साहित्य में आचार और विचारगत मान्यताओं के साथ भौतिक जगत सम्बन्धी विवरण और व्याख्याएं तृतीयांश मात्रा में है। फलतः यह स्वाभाविक है कि क्या ये सभी विवरण विज्ञान सम्मत नहीं हैं ? इस प्रश्न के उत्तर में जैन धर्म के मूल एवं बुद्धिवादी युग के साहित्य में उपलब्ध सामग्री पर दृष्टिपात करना होगा। इससे स्पष्ट है कि जैन आचार और विचारों की पृष्ठभूमि वैज्ञानिक प्रक्रिया पर ही आधारित है। यह अवग्रह, ईहा, अवाय एवं धारणा के रूप में चतुश्चरणी है। यही कारण है कि उसके बहुसंख्यक वर्णन वर्तमान वैज्ञानिक अन्वेषणों से संगत सिद्ध हो रहे हैं। इस आधार पर जैन धर्म विश्व का सर्वाधिक विज्ञान सम्मत धर्म है। वस्तुतः विज्ञान धर्म का पूरक एवं परिवर्धक ही सिद्ध हुआ है। इसका गुण विशेषित नाम स्वयं इसकी वैज्ञानिकता प्रमाणित करता है। वस्तुतः किसी भी तन्त्र की वैज्ञानिकता इस तथ्य पर निर्भर करती है कि उस तन्त्र में बुद्धिवाद के साथ कितना प्रयोगवाद समाहित है ? वस्तुतः जहां विज्ञान 'क्या है' प्रश्न का उत्तर देता है, वहीं धर्म 'क्या होना चाहिये' का उत्तर देता है। विज्ञान व्यावहारिक है और धर्म आदर्श है। आइंस्टीन ने इसे अपनी भाषा में व्यक्त करते हुए कहा है कि 'विज्ञान का अल्प ज्ञान हमें धर्म से दूर करता है पर उसका अच्छा ज्ञान हमें धार्मिक ही बना देता है।' हमारा सुसंस्कृत व्यवहार ही तो हमें आदर्श की ओर ले जाता है।

जैन शास्त्रों में वैज्ञानिक प्रवृत्ति का पोषण

जैन-धर्म अनीश्वरवादी है। अंतरिक्ष शास्त्री कार्लसागन ने ईश्वरवाद को परम तथ्य के बदले मात्र उपकल्पना बताया है। उन्होंने इसके विरोध में वैसे ही अनेक तर्क दिए हैं जो हमारे न्यायशस्त्रियों ने एक हजार वर्ष से भी पूर्व दिए थे। उन्होने गणितीय अनंत गुण श्रेणी के मान की सान्तना के अतिरिक्त तर्क से भी ईश्वरवाद को अमान्य किया है। फलतः स्वयं के भाग्य विधाता के लक्ष्यवेधक के रूप में जैन-धर्म वैज्ञानिक हो, तो इसमें आश्चर्य ही क्या है ? जैनों के प्राचीन शास्त्र मनुष्य को वैज्ञानिक बताकर धर्मरुचि जगाते हैं। जन्मते ही मनुष्य बाह्यजगत को पहले देखता है, अन्तर्जगत की बात बाद में आती है, अतः प्रकृति से ही

Jain Education International 2010_03 For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मनुष्य वैज्ञानिक पहले है, धार्मिक बाद में। जैनों ने महावीर को दृष्टा माना है। आचारांग का मनीषी बड़ा वैज्ञानिक था, उसने कहा–मैं दृष्ट, श्रुत, सुविचारित और अनुभूत धर्म का उपदेश दे रहा हूं। जिज्ञासा ज्ञान की जननी है। तत्त्व का अध्ययन कुशाग्रबुद्धि से करना चाहिए, अनुभवकर्त्ता के लिए आदेशों की आवश्यकता नहीं है। उत्तराध्ययन तो स्पष्ट कहता है–'पण्णा सम्पिक्खए धम्मं।' कुन्दकुन्द ने भी कहा है वे अपने अनुभव के आधार पर तत्त्व कह रहे हैं। यदि इसमें कोई पूर्वापर विरोध हो, तो विद्वानों को उसे दूर कर लेना चाहिए। समंतभद्र ने भी प्रत्यक्ष और अनुमान के अविरोधी एवं अविसंवादी शास्त्रों की ही प्रामाणिकता स्वीकार की है। प्रामाणिक शास्त्र तत्त्व का यथार्थ, अविपरीत एवं असंदिग्ध विवरण देते हैं। इन्हें तो परीक्षाप्रधानी ही माना जाता है। इन्हीं के समय से जैन दर्शन में "परीक्षा" या "मीमांसा" ग्रंथ प्रारम्भ हुए हैं। सिद्धसेन ने भी उद्घोष किया कि दृश्य जगत का अध्ययन तर्कवाद से तथा अभौतिक या नैतिक जगत्का अध्ययन आगमवाद से करना चाहिए। हरिभद्र सूरि ने भी कहा है–युक्तिमद वचनं यस्य, तस्य कार्यः परिग्रहः। आचार्य हेमचन्द्र ने भी "शास्त्रस्य लक्षणं परीक्षा" द्वारा बुद्धिवादी वैज्ञानिकता का उद्घोष किया है। तेरहवीं सदी के आशाधर और उत्तरवर्ती नेमचन्द्र सूरि ने तो श्रावकों तक के लिए प्रज्ञा और बुद्धि के उपयोग के गुण सुझाए है। सम्भवतः इस परीक्षाप्रधानी वृत्ति के प्रवजन के कारण ही जैन-धर्म अब तक संरक्षित एवं प्रभावशील बना रहा है। वैज्ञानिक युग में भविष्य में इसका और भी संवर्धन होगा, ऐसी आशा है।

प्राचीन जैनशास्त्रों में मध्य-युग तक परीक्षा प्रधानी वृत्ति को प्रेरित किया है। इस वृत्ति ने जैन आचार एवं विचारों को पर्याप्त वैज्ञानिकता प्रदान की है। यही कारण है कि इन ग्रथों के अवलोकन से हमें यह ज्ञात होता है कि समय-समय पर इनकी अनेक सैद्धांतिक, निरीक्षणात्मक, नाम निर्देश / क्रम एवं संख्यात्मक मान्यताओं में संवर्धन और परिवर्धन भी हुआ है जो इसके ऐतिहासिक विकास को भी निरूपित करता है। फलतः सभी धार्मिक मान्यताओं की चरम सत्यता अब निर्विवाद नहीं रही है और उन्हे भी विज्ञान के समान प्रवाहशील ज्ञानधारा की कोटि में मानना चाहिए। इस वक्तव्य के समर्थन में कुछ उदाहरण दिए जा सकते हैं :–

Jain Education International 2010_03 For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जैन मान्यताओं में परिवर्धन के कुछ उदाहरण

(अ) सैद्धांतिक

(१) मूल धारणा – सर्वजीववाद, जीव-अजीववाद

(२) धर्म के याम – त्रि-याम, चतुर्याम, पंचयाम

(३) उपयोग का स्वरूप – ज्ञान-दर्शन, इनके अतिरिक्त सुख, वीर्य आदि

(४) प्रत्यक्ष की परिभाषा – १. अतीन्द्रिय ज्ञान २. इंद्रियज/अतीन्द्रिय ज्ञान।

(५) १-४ इंद्रिय जीवों का जन्म – संमूच्छिम तथा गर्भज

(६) विश्व का आकार और आयतन – आगमों में और धवला में भिन्न-भिन्न (२३६-३४३ रज्जु)

(आ) भौतिक निरीक्षण

(१) नामों का क्रम : तत्त्वों का क्रम– आगमों में गीता के समान, तत्त्वार्थ सूत्र में तर्कसंगत।

(२) नाम भेद – छः आवश्यक दोनों संप्रदायों में भिन्न षटकायः आचारांग और अन्य ग्रंथों में भिन्न।

(३) नाम और क्रम भेद – प्रतिभा, भावना, सत्य के भेदों में विभिन्न ग्रन्थों में अन्तर

(४) संख्या भेद तत्त्व संख्या, ७, ६, १०, ११ चरित्र, पंचाचार, चतुराचार, त्रिरत्न श्रुत-भेद ६, १६, २६, २६ साधु के मूल गुण १८, २७, २८, ३६ व्रत–५, ६,१२ (संल्लेखना सहित / रहित) अनुयोग द्वार ६, ८, ६, १४, २०, २३,२४, ३६ स्याद्वाद के भंग ३, ४, ७ पुरूष की कलाएं ७२ (नाम भिन्नता, १४०) स्त्री की कलाएं ६४ (नाम भिन्नता, १४०) रोगों की संख्या ७, १०, १६ (नाम भिन्नता, ६४) चिकित्सीय विधियां ५, ३६

ऐतिहासिक दृष्टि से भी हमने विभिन्न युगों में प्रवाहमान और अप्रवाहमान उपदेशों एवं अर्धफालक तथा यापनीय संप्रदायों के समग्रधारा में विलयन को स्वीकृत किया है। जंबुस्वामी अंतिम केवली थे। उनके बाद अन्तःप्रज्ञा एवं स्वानुभूति का चरमोत्कर्ष अवरूद्ध सा ही दिखता है। आरातीय आचार्यों की क्षायोपशमिक तरतम्यता के परिप्रेक्ष्य में परीक्षा प्रणाली वृत्ति की आवश्यकता आज और भी अधिक बढ़ गई है। इसलिए इसके अन्तर्गत सार्वत्रिक मान्यताओं की धारणा का परीक्षण ऐतिहासिक दृष्टि से अधिक तर्कसंगत होगा।

Jain Education International 2010_03 For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वैज्ञानिक प्रवृत्ति क्षमता

जैन मान्यताओं की वैज्ञानिकता का अनेक आधुनिक विद्वानों एवं साधुजनों ने शोधपूर्ण अध्ययन किया है और पाया है कि जैन विचारधारा एक समग्रवादी विज्ञान है जो विश्व के पंजीकृत स्वरूप को वैज्ञानिक आधार देती है। इसके अनेक सिद्धान्त, गुणात्मक रूप से ही सही, आज की भाषा में अच्छी तरह व्यक्त किए जा सकते हैं। अनेक प्रकरणों में वैज्ञानिकों ने पूरक या अतिरिक्त सूचनाएं प्रदान कर उन्हें अधिक सार्थक बनाया है।

किसी भी विषय वस्तु का अध्ययन दो प्रकार से किया जा सकता है – १. ज्ञाता सापेक्ष स्वानुभुति, प्रतिभाज्ञान या आगम एवं २. ज्ञेय सापेक्ष या निरीक्षण परीक्षणात्मक ज्ञान। सिद्धसेन ने बताया है कि संसार में बहुत कम विषय ऐसे हैं जिनका आगम या अतीन्द्रिय ज्ञान से अध्ययन किया जा सकता है। फिर भी एक युग ऐसा रहा है जब अतीन्द्रिय ज्ञान को प्रमुखता मिली। इस कारण धर्म के क्षेत्र में वैज्ञानिक दृष्टिकोण शिथिल हो गया और उसका परिणाम धार्मिकता के ह्रास के रूप में अब हमारे सामने है। यह खेद की बात है कि इस प्रवृत्ति को आज भी संस्कृति संरक्षण के नाम से पोषित किया जा रहा है।

वर्तमान में धार्मिक आस्थाओं को बलवती बनाने के लिए तथा अनुकरणीय नैतिक जीवन पद्धति के पुनरुद्धार के लिए यह आवश्यक है कि हम सिद्धसेन, अकलंक, समंतभद्र आदि की परम्परा का अनुसरण करें एवं अपने श्रद्धावाद को वैज्ञानिक आधारों पर दृढ़ करें। इस प्रक्रिया में कभी-कभी शास्त्रवर्णित दृश्यजगत के अनेक प्रकरणों से संबद्ध मान्यताओं में परिवर्धन, संशोधन और पूरण भी आवश्यक हो सकते हैं। अनेक विद्वानों और साधुजनों ने यह अनुभव किया है कि हमारे प्राचीन ग्रन्थ सूत्र ग्रंथ हैं, उनमें सांकेतिक भाषा है। उनमें किसी भी तथ्य के संबंध में निरीक्षण और परिणाम मात्र दिए हैं। वे परिणाम कैसे प्राप्त हुए, इनकी क्रियाविधि का क्या स्वरूप है, इस संबंध में स्पष्टताएं कम हैं। साथ ही वे उस युग में लिखे गये थे जब आज के समान वैज्ञानिक अध्ययन की सुविधाएं नहीं थीं। वैज्ञानिक अन्वेषणों ने इस कभी को दूर करने में पर्याप्त अंशों में सफलता पाई है। यही नहीं, उसने अनेक ऐसे क्षेत्रों में भी सार्थक प्रवेश किया है जिन्हें पहले "अतीन्द्रिय" कहा जाता था। इससे अतीन्द्रिय शक्तियों के विकाश का मार्ग भी खुला है। इसका ही यह फल है कि शास्त्रों में अन्यथा निरूपणों के बावजूद भी इस पंचमकाल में भी जैनधर्म सम्मत आठों कर्मो के क्षयोपशम में वृद्धि हुई है। इस क्षयोपशम की वृद्धि को समग्र

Jain Education International 2010_03 For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

धार्मिकता की वृद्धि का प्रतीक माना जाना चाहिए। यदि वैज्ञानिक अन्वेषण कार्मिक क्षयोपशम में वृद्धि कर सकते हैं तो वे हमारे कार्मिक क्षय की प्रक्रिया को भी प्रेरित कर सकते हैं।

बीसवीं सदी में ८ कर्मों के क्षयोपशम में वृद्धि : धार्मिकता में वृद्धि

(१) ज्ञानावरण कर्म का क्षयोपशम : ज्ञान के क्षितिजों में वृद्धि (कृषि, जीवविज्ञान, ज्योतिर्जगत, चिकित्सा, संश्लेषण शिल्प, सृष्टि विद्या, सजीव कोशिका संश्लेषण, अतीन्द्रिय प्रत्यक्षण, दूरबोध, परचित बोध, विचार संप्रेषण, योगज शक्तियां आदि।)

(२) दर्शनावरण कर्म का क्षयोपशम : विभिन्न प्रकार के दूरदर्शी, सूक्ष्मदर्शी एवं मापनयंत्रों द्वारा इन्द्रिय एवं दर्शन के क्षितिजों में वृद्धि।

(३) वेदनीय कर्म का क्षयोपशम : सुख सुविधा के साधनों में वृद्धि, भोग-भूमि कल्प, श्रमविहीन जीवन की संभावना। समाजवादी वृत्तियों में वृद्धि, प्राकृतिक विपदाओं में अन्तर्राष्ट्रीय संवेदनशीलता, दीर्घजीविता।

(४) मोहनीय कर्म का क्षयोपशम : धर्म की समाजपरक व्याख्या, विभक्त परिवार प्रथा और परिवार नियोजन, धार्मिक क्रियाकलापों में निरंतर वृद्धि।

(५) आयुकर्म का क्षयोपशम : दीर्घजीविता में वृद्धि, मनुष्यों की जनसंख्या में गुणोत्तर वृद्धि।

(६) गोत्रकर्म का क्षयोपशम : अनुसूचित श्रेणियों का राजनीतिक उत्परिवर्तन, सेवा एवं शिक्षा में आरक्षण, व्यवसाय विविधता के कारण उच्चतर जीवन स्तर के अधिक अवसर।

(७) नामकर्म का क्षयोपशम : दुर्लभ मनुष्य गति के सदस्यों की जनसंख्या में गुणोत्तर वृद्धि। शरीर के अंगप्रत्यंगों का प्रत्यारोपण, मनोदैहिक एवं देह मानसिक विज्ञान का अभ्युदय, मनुष्यों की शारीरिक एवं मानसिक क्षमताओं में वृद्धि।

(८) अंतराय कर्म का क्षयोपशम : व्यक्ति/समाज के विकास में अनेक बाधाओं का शासकीय एवं अशासकीय माध्यमों द्वारा निराकरण, शासन एवं धर्माचार्यों द्वारा वर्तमान संगत व्याख्याएं।

Jain Education International 2010_03 For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वैज्ञानिकता को संबर्धित करने का उपाय : ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य

अमूर्त अध्यात्मवादी सिद्धांतों के परिप्रेक्ष्य ने भारतीय संस्कृति के विकास के ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य को गौण बनाये रखा। इससे भारत के विविधा भरे इतिहास की शैक्षिक एवं विचारजगत में जो दुर्बल स्थिति है, उससे सभी परिचित हैं। विचार क्षेत्र में मध्य युग से वेद, ईश्वर ओर सर्वज्ञ की धारणाओं ने हमारी मान्यताओं पर चरम सत्य की श्रद्धावादी मुद्रा प्रतिष्ठित कर हमें मानसिकतः अमूर्त जगत में ही बनाये रखा और हमने स्वयं को एवं मूर्त जगत को देखने-जानने का बौद्धिक एवं निरीक्षणात्मक प्रयास भी करना बंद कर दिया। इससे लगभग दसवीं सदी तक जो ज्ञान-विज्ञान के विभिन्न क्षेत्रों में हमारी प्रतिष्ठा थी, वह भी समाप्त प्राय हो गई। इसे पुनः प्रतिष्ठित करने के लिए ऐतिहासिक और बौद्धिक परिप्रेक्ष का विकास आवश्यक है। इससे एक ओर विचारों के विकास का मूल्यांकन हो सकता है, वहीं बौद्धिक परिप्रेक्ष हमें मूल्यांकन एवं भावी विकास के लिए मार्ग प्रशस्त करता है। विचारों के क्षेत्र में जैनों के अनेकान्तवाद, परमाणुवाद, वनस्पति सजीवतावाद, ऊर्जाओं एवं कणों का पुदगलवाद, भक्ष्याभक्ष्य विचारणा आदि ऐतिहासिक दृष्टि से तो महत्त्वपूर्ण हैं ही, समसामयिक दृष्टि से भी उत्तम कोटि में आते हैं। नैतिक सिद्धांतों की चरम सत्यता की तुलना में, भौतिक जगत संबंधी विवरणों को त्रैकालिक सत्य मानना सही नहीं लगता। इसीलिए हम बीसवीं सदी में बहुत पीछे रह गए हैं। जैन शास्त्रों के भौतिक जगत और घटनाओं से संबंधित विवरणों के अध्ययन से ज्ञात होता है कि वे शास्त्रीय युग में प्रतिष्ठित बने पर अब नगरी और औद्योगिक सभ्यता के युग में उनमें से अनेकों में विसंगतियां और अपूर्णताएं स्पष्ट निरीक्षित होने लगी हैं। मध्ययुग के पूर्व के जैनाचार्यों ने विसंगतियां प्रकट होने पर उन्हें दूर करने हेतु प्रत्यक्ष की द्विविधता, परमाणु की व्यवहार-निश्चयता, प्रमाण की विभिन्न-दोष-निवारणी परिभाषा-संशोधनता आदि के समान वैज्ञानिक तर्क एवं व्यवहार-संगत बुद्धिवाद को प्रश्रय दिया। इस युग में भी इसी वृत्ति की आवश्यकता है। प्राचीन सिद्धांतों के ऐतिहासिक दृष्टि से समीक्षण कर उन्हें बीसवीं सदी की बौद्धिक एवं प्रयोगसंगत वैज्ञानिकता देनी चाहिए जैसा ध्यान या प्रेक्षाध्यान के संबंध में किया जा रहा है। इस प्रवृत्ति से ही जैनधर्म की वैज्ञानिकता शीर्षतः प्रतिष्ठित होगी और वह विश्वधर्म होने की क्षमता प्राप्त कर सकेगा।

Jain Education International 2010_03 For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

गणित की भाषा में जैनधर्म के मूल सिद्धांत

जैनधर्म जहां अपने लोकोत्तर गणित के लिए सुख्यात है, वहीं वह अपने भौतिक और आध्यात्मिक गणित में भी निपुण है। इसके कुछ सिद्धांतों को गणितीय सूत्रों में देखिये –

(i) सुख(H) धार्मिकता (R) के अनुपात में होता है :

$$H \propto R$$

(ii) सुख पूरित इच्छाओं और संपूर्ण इच्छाओं का अनुपात है :

$$H = \frac{\text{पूरित इच्छाएं (D)}}{\text{कुल इच्छाएं (Di)}} = \frac{D}{Di}$$

इच्छाएं न्युनतम होने पर H (सुख) अनन्त हो सकता है। इच्छाओं के कम होने से कामिक घनत्व कम होता है एवं सुख बढ़ता है। फलतः

$$H = \frac{Kd}{Kdi}$$

(iii) इसी प्रकार जैन आध्यात्मिक गणित में राशियों का योग इनके गुणनफल के समानुपात में होता है।

उदाहरणार्थ :–

अहिंसा + अनेकान्त + अपरिग्रह = (अ)³

समता + श्रम + स्वावलम्बन = (स)³

सम्यक् (दर्शन + ज्ञान + चारित्र) = सम्यक् (द. ज्ञा. चा)

(iv) अनेकान्त सिद्धान्त को अनेक गणितीय रूपों में व्यक्त किया जा सकता है :

(अ) सांख्यिकीय $3c_1 + 3c_2 + 3c_3 = 7$

(ब) संपूर्ण सत्य $= T = O = \int P.dp$ जहां P = भंग की संख्या है।

(v) प्रमाण और नय के लिए कहा जाता है कि प्रमाण नयों का समाक्षर है, अर्थात –

$Pr. = \sum n$ [जहां Pr प्रमाण है और n नय है।]

Jain Education International 2010_03 For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

(vi) आध्यात्मिक विकास के लिए मूर्च्छा का बल► (केन्द्रमुखी) अमूर्च्छा या वीतरागता के केंद्रापसारी बल से निर्बल होना चाहिए, अर्थात –

वीतरागता का केन्द्रापसारी बल► मूर्च्छा का केंद्रमुखी बल

इन सूत्रों तथा इनके ही समान अन्य सूत्रों से जैन सिद्धांतों को नयी पीढ़ी के लिए आकर्षक एवं प्रेरक बनाया जा सकता है। ये सूत्र जैन धर्म की वैज्ञानिकता के निर्देशक हैं।

Jain Education International 2010_03 For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org